UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186033
UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University Library

Call No. H81 S53K

Accession No. H3293

Author शर्मा नरेंद्र

Title कदली-वन

This book should be returned on or before the date l
marked below.

कदली-वन

नरेन्द्र शर्मा

किताब महल
इलाहाबाद

प्रकाशक—किताब महल, ५६ ए, ज़ीरो रोड, इलाहाबाद।
मुद्रक—अनुपम प्रेस, १७ ज़ीरो रोड, इलाहाबाद।

श्री भगवती चरण वर्मा

को

सप्रेम समर्पित

कदली-वन

बाहर भीतर की ऊष्मा से पीड़ित मनोजगत यदि कदली-वन की सृष्टि के हेतु लालायित हो, तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। जैसे जीवों को आधार देने वाली पृथ्वी का हृदय अन्तरिक्ष में स्थित है, वैसे ही ज्वालाओं में तपते हुए मिट्टी के हृदय के किसी अज्ञात कोने में, कदली-वन विकसित होता और फलता-फूलता रहता है। स्थूलकाय विशाल बरगद ही सच्चा है और उसका सूक्ष्म-सा नाचीज़ बीज झूठा है; मैं इस बात को नहीं मानता।

वस्तुजगत और भावजगत परस्पर निरपेक्ष नहीं हैं। वह तो परस्पर सम्बद्ध हैं, रहे हैं और रहेंगे। दोनों के पक्षपातियों का एकांगी दृष्टिकोण केवल अर्धसत्यों का पोषण करता रहा है। सच तो यह है कि माला के मनकों को देखना और गूँथने वाले अनदेखे सूत्र को न पहचान सकना दर्शक की दृष्टि का दोष है।

"कदली-वन" से ठीक पहले, मेरा कविता-संग्रह, "अग्नि-शस्य" प्रकाशित हुआ था। आज ही मुझे आभास हुआ कि "अग्नि-शस्य" के पश्चात् "कदली-वन"—यही तो रचना-क्रम की सहज स्वाभाविक गति है।

मुझे न तो "कदली-वन" पर वानर-दल के टूट पड़ने की आशंका है और न गज-गमन करते हुए गम्भीर आलोचकों द्वारा इसके रौंदे जाने का भय है। अपने प्रेमी पाठकों का मुझे सदैव बल संबल रहा है।

बम्बई,
१२-६-१९५३

नरेन्द्र शर्मा

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
१. कदली-वन	१	२६. कच्चा धागा	३७
२. कदली-दल	३	२७. विचार	३६
३. गीत सुनाओ !	५	२८. वर्तमान	४०
४. मेरे गीत	७	२६. नवयुग	४१
५. चाँद-सितारे	८	३०. प्रश्न	४२
६. अनजान !	६	३१. अगन	४३
७. मीठी माया	१०	३२. लघुभार लहरें	४४
८. पालकी	१२	३३. मावस	४५
६. मौनालाप	१३	३४. निशा पुकारी !	४६
१०. दुलहन	१५	३५. युग की रानी	४८
११. मानव	१७	३६. मुहूर्त	४६
१२. चाँदनी	१८	३७. देश मेरे !	५०
१३. ज्योति और तम	१६	३८. अव्यक्त	५२
१४. अनुक्रम	२०	३६. रामकहानी	५३
१५. मत्त कुरंग	२१	४०. दुख होता है !	५४
१६. विरोधाभास	२२	४१. पोंछ लो आँसू	५६
१७. घड़ा	२४	४२. ताड़ का जोड़ा	५७
१८. कुंभकार	२५	४३. वन और घन	५८
१६. केन्द्र और विस्तार	२६	४४. वर्षा का तूफान	५६
२०. काया	२८	४५. बादल	६०
२१. किस किनारे	३०	४६. बादल-दल	६२
२२. संकोच	३३	४७. हिरने	६४
२३. बीती घड़ियाँ	३४	४८. कवि गाता है !	६५
२४. यह ममत्व !	३५	४६. विजन-वीणा	६६
२५. निर्वासित	३६	५०. आनन्द-बीना	६७

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
५१. पुकार	६८	६१. काम-धारा	८०
५२. अज्ञात व्यथा	६९	६२. फूल-कली	८१
५३. बुद्धि-डोर	७१	६३. पेड़	८२
५४. नव-झंकार	७२	६४. पर्वत	८३
५५. सन्यासी	७३	६५. भग्न मन्दिर	८४
५६. कनक रेख	७५	६६. मध्ययुगीन और नवीन	८६
५७. तरु विशाल	७६	६७. औरंगजेब की कब्र	८७
५८. अमलतास	७७	६८. मरुथल की मेंहदी	८९
५९. फागुन मास	७८	६९. प्रतीक	९१
६०. धरती-आसमान	७९	७०. कणिकाएँ	९२

/ कदली-वन

अंबर का नील बिम्ब, धरती का पीतल !
फैला है योजन भर कदली-वन शीतल !

धरती का हरा-भरा हृदय नयन-भावन,
उतरा है अंबर से हरित-वेश सावन,
मणिपुर का लास-लसित चंद्रातप पावन,
जंगम बन गया या कि सहसा कवि का मन !

अंबर का नील बिम्ब, धरती का पीतल !
फैला है योजन भर कदली-वन शीतल !

नागदन्त खंभों पर मदनमस्त चम्पा !
रति को अति सुख से ज्यों आई हो कम्पा !
अंग धरे हर तरंग लहराया पम्पा !
कत औ' मोम हुई प्रलयंकर शम्पा !

अंबर का नील बिम्ब, धरती का पीतल !
फैला है योजन भर कदली-वन शीतल !

भूल ब्रह्मज्ञान, बना ब्रह्म आज माया !
माया का यह स्वरूप मुझे बहुत भाया !
श्यामल चिद्रश्मि-कुञ्ज, असित-रश्मि-छाया !
सुन्दर का सहज रूप, कदली की काया !

अंबर का नील बिम्ब, धरती का पीतल !
फैला है योजन भर कदली-वन शीतल !

कदली-दल

शीतल है सन्तोष समान !

तपे हुए को सहलाता है,
धीरे धीरे लहराता है,
रूपक ताल, विलम्बित लय में,
कोई अम्बर में गाता है
मनहर मंगल गान !

वह विशाल है बड़े हृदय-सा,
मरकत-गिरि पर चंद्रोदय-सा,
शस्य श्यामला वसुन्धरा पर
जीव-मात्र को दिये अभय-सा
मूर्तिमान वरदान !

सावन की मन-भावनता का,
वह प्रतीक है पावनता का !
स्वप्न अपर्णा के नयनों का,
साज राधिका के शयनों का
हरित भरित अम्लान !

चित्र किसी सुन्दर वन्या का,
अलिखित पत्र किसी कन्या का,
भादों की पूनम रजनी में
सूक्ष्म स्वरूप धरा धन्या का !
चंद्रबिम्ब मुसकान !
शीतल है सन्तोष समान !

गीत सुनाओ !

गीत सुनाओ, गीत सुनाओ !
मानव के मरु-मालव मन में
हरियाले वन-बाग लगाओ !

जन जन के मन के जनपद में
पद पद पर झूमे अमराई,
तरु तरु की नन्हीं टहनी के
तन में हो मधुज्वाल समाई;
कोंपल की कोमल ज्वाला से
दिन में दीपावली जलाओ !

छेड़ छेड़ कर राग-रागिनी
बीच बीच में छेको क्यारी;
सरसा कर, नव रस बरसा कर,
सींच सींच, कर दो फुलवारी !
खुली पँखुरियों पर फूलों की,
मन के गोपन चित्र बनाओ !

हो ऐसा विस्तार मनोहर,
चढ़ें तार स्वर की वल्लरियाँ !
वर्ण वर्ण पर वर्ण वर्ण की,
गमक गमक पर गमकें कलियाँ !
ताल ताल पर छा रसाल पर
तान-वितान बनो, लतिकाओ !

मात्रा का गुण बढ़े निरन्तर,
झलकें झलमल दीपशिखाएँ !
काल देखता ही रह जाए,
झाला दें जब दसों दिशाएँ !
कनक-पीठिका पर धरती की
स्वर की सतरँग ज्योति जगाओ !

मेरे गीत

मेरे गीत बड़े हरियाले !
मैंने अपने गीत
सघन-वन-अन्तराल से खोज निकाले !

मैंने इन्हें जलधि में खोजा,
जहाँ द्रवित होता फ़ीरोज़ा !
मन का मधु वितरित करने को
गीत बने मरकत के प्याले !

कनक-रेनु, नभ-नील-रागिनी;
बनी हरी वंशी सुहागिनी !
सात रंध्र की सीढ़ी पर चढ़
गीत बने हारिल मतवाले !

देवदारु के हरित शिखर पर
अंतिम नीड़ बनायेंगे स्वर !
शुभ्र हिमालय की छाया में
लय हो जाएँगे लय वाले !

चाँद-सितारे

चाँद-सितारे गीत हमारे !

रातों जग कर पढ़ते इनको
अनगिनती नयनों के तारे !

ज्ञानी इन गीतों में उलझे,
जो उलझे सो कभी न सुलझे !
बिना पढ़े गाते हैं इनको—
वन के पंछी साँझ-सकारे !

हैं अज्ञेय, परन्तु गेय हैं;
दिशा-काल से ये अजेय हैं !
भाव-प्रधान गीत; जो चाहे
वैसा इनका अर्थ विचारे !

शून्य पृष्ठ पर जगमग अक्षर !
लेखक इनका कौन कवीश्वर ?
नव-रस-भरे नवग्रह शीर्षक,
ज्योतिर्मय के पद उजियारे !

अनजान !

किसी अनजान नगरी के
किसी अनजान कोने में,
कहीं अनजान कोई सुन्दरी मुझको बुलाती है !

कभी जो लिख नहीं पाया
उन्हीं अनजान गीतों को,
किन्हीं अनजान छंदों में निरन्तर गुनगुनाती है !

कभी अनजान निर्झरिणी,
कभी अनजान नीलाचल;
कभी दूर्वाभरित धरती,
हरित वन का कभी आँचल;
अमित अनजान छवियों में झलक अपनी दिखाती है !

कभी मणिमेखला बन कर
अतल जल बीच इठलाती,
गगन की नील वीणा में
कभी झनकार बन जाती,
उसे मैं भूल जाता हूँ, मुझे वह कब भुलाती है ?

मीठी माया

दुख सुख की मीठी माया में
बँध कर कितना प्रिय है जीना !
सुमुखि, इसलिए, हटा न लेना
अश्रु-हास का घूंघट झीना !

एक बूंद आँसू के आगे
ज्वालाएँ पानी भरती हैं,
ओस-धुली अधखिली कली की
ऋतुएँ अगवानी करती हैं;
वह पद-जड़ित तुम्हारी चितवन
हर नख पर जड़ रही नगीना !

तुम दिन भर सोई रहती हो
अन्तर्यमुना की लहरों में,
नखत-पाँति बन कर जगती हो
रजनी के पिछले पहरों में !
सोते-जगते रूप वही है
चिर अनुराग-राग-रस-भीना !

करती तुम अपने मन की,
ात सदा सब की सुनती हो !
देश-काल का ताना-बाना;
धूप-छाँह का पट बुनती हो !
तार महीन नहीं टूटेंगे—
पल-छिन, निशि-दिन, पाख-महीना !

पालकी

कहीं रुकती ही नहीं यह पालकी !

सामने उड़ते चले जाते अरुण क्षण के बलाहक,
अनुगमन करते चले आते दिशा के चार वाहक;
असम थल पर, अगम जल पर, एक-सी गति चाल की !

पलक बन कर आसमानी रंग के परदे पड़े हैं,
किसी ने देखी न चितवन, नयन लाखों के गड़े हैं;
किस अगोचर की बनी वह नव बधू चिरकाल की ?

कब रुकेगी पालकी, परदा खुलेगा हाथ से ?
कब न जाने मिलन होगा नियति का गतिनाथ से ?
सम चरण धर प्रकट होगी मूर्ति कब लय-ताल की ?

मौनालाप

हैं तुम्हारे नयन, श्यामा,
आज क्यों अनिमेष इतने ?
हैं छिपे मेरे लिए
इस दृष्टि में संदेश कितने ?

बिखर कर बँधती लटों में
विगत युग की कैरवी है,
उमड़ती अँगड़ाइयों में
नये दिन की भैरवी है,
चढ़ी भौंहों पर चढ़े हैं
शरों से निर्देश कितने ?

किस दिशा के धनुष पर अब
काल-प्रत्यञ्चा चढ़ाऊँ ?
कहो, अभिनव मानवी, मैं
किस दिशा के दुर्ग ढाऊँ ?
क्षितिज की प्राचीर के उस पार
भी हैं देश किनने ?

क्या कहा ?—सब जग विजित,
बस एक मन मेरा अजित है ?
दस दिशाओं की परिधि
मन केन्द्र के कारण रचित है !
कहो तो, हैं रचयिता के
नाम, रूप, निवेश कितने ?

कौन हो तुम, भाव-सम्भव
मौन की प्रतिमूर्ति जैसी ?
प्रेरणा भी, पूर्ति भी, मद से
अलस-पद स्फूर्ति जैसी !
चिद्विलासिनि, हैं तुम्हारे
इन्द्रधनुषी वेश कितने ?

दुलहन

नव युग की दुलहन बैठी है
खँडहर हुई हवेली में,
नयी सुबह हँसती है उसकी
मेंहदी लगी हथेली में !

आँगन खुरच रही है बैठी
पद-नख-पाटल-पाँखों से,
खोद खोद कर पूछ रही
इतिहास विगत नत आँखों से,
लिपटी बैठी है भविष्य की
गति-विधि पीली सेली में !

माँटी के हैं खाट - खटोले,
वह सूरज की किरन-कनी !
कनक - रेनु में वेणु बजाता
आता होगा श्याम धनी !
केका-रव गूंजेगा उसकी
चपल चाल अलबेली में !

आलिङ्गन में बँधते बँधते
ललक पुलक क्रीड़ा होगी,
आज तेज-तनया विद्युत् से
मेघा की क्रीड़ा होगी !
आँगन में अंकुर फूटेगा
सावन-रैन अकेली में !

मानव

आरक्त रवि का खंड हूँ,
मैं काल का कोदंड हूँ,
मैं प्रकृति से उद्दंड हूँ,
मुझको झुकाते जा रहे
निष्ठुर नियति के हाथ !

पर है प्रखर शर डोर पर,
है किरन शर की कोर पर,
है दृष्टि पथ के छोर पर;
निश्चय नियति के हाथ है,
पर शक्ति मेरे साथ !

कोदंड का तन चूर है,
गंतव्य शर का दूर है,
मंतव्य पथ कर क्रूर है,
पथ - पार के दिङ्नाग का
पर छिन्न होगा माथ !

चाँदनी

चाँदनी लिखने लगी जल पर रुपहले गीत !
लहरियों में उभर आया अतल का संगीत !

हंस के लघु पंख-सी लघु लेखनी गतिशील,
चंद्रमा के हास की मसि, पृष्ठ जलनिधि नील;
विषय अति प्राचीन, चितवन और चित की प्रीत !

लिख रही है वह युगों से, सुन रहा है सिन्धु !
इन्दु की मुसकान, लहरों पर सुधा के विन्दु !
लेखनी चञ्चल मथानी, गीत हैं नवनीत !

पढ़ नहीं सकते सभी के नैन इनके बोल,
सरल हैं पर विरल भी हैं गीत ये अनमोल,
हर जवानी की तरह, हर रात जाती बीत !

ज्योति और तम

क्यों हमारे बीच, प्रियतम,
ज्योति है पर तम नहीं है ?
दीप को आँचल बने जो
आवरण का भ्रम नहीं है !

चतुर्दिक जाज्वल्य जागृति !
पंथ का अथ है, नहीं इति !
गूँजती सरगम गगन में,
पर कहीं भी सम नहीं है !

दृष्टि-पथ पर झाइयाँ हैं,
अहम् की परछाइयाँ हैं,
इष्ट प्रिय है दृष्टि को, पर
प्रिय अभी प्रियतम नहीं हैं !

ज्ञान का अभिमान बाती,
स्नेह से जिसको जलाती,
बुलाती मधु-मिलन-तम को,
ज्योति भी कुछ कम नहीं है !

अनुक्रम

रात भर जलता रहेगा कुटी में चुपचाप,
भोर होते ही बुझेगा दीप अपने आप!
पौ फटेगी, घटेगी तन-वर्तिका की आयु;
दीप का निर्वाण होगा, किरण की सुन चाप!

हँसेगी चढ़ कर अटारी पर किरन सुकुमार,
निकल कर दिनकर हरेगा कुटी का तम-भार!
पूर देगी धूप आँगन में कनक का चौक,
डाल पर पंछी कहेगा दिन मिलन-त्योहार!

किन्तु फिर भी साँझ होगी और होगी रात!
प्राण का फिर दीप होगा, फिर कुटी का गात!
क्या न फिर इस लोक में होगा कनक आलोक?
दीप फिर बुझ जायगा, फिर आयगा मधुप्रात!

मत्त कुरंग

मधुर मिलन को ब्याह दिया है।
चिर बिछुड़न के संग !
वेणु पर मोहित मत्त कुरंग।

यह भी अजब विधान किया है,
जल से थल को बाँध दिया है;
तट की सिकता पर सो जाती
सागर - सुता तरंग !

देखा यह भी खेल अनोखा,
प्राण - देह का मेल अनोखा;
अन्तरिक्ष के अमृत नाद को
माँटी बनी मृदंग !

जिन तत्वों का चिर विरोध है,
उनका पारस्परिक शोध है,
दोनों ही आकुल व्याकुल हैं,
दीपक और पतंग !

विरोधाभास

कैसा प्रबल विरोधाभास !
दासी रूप मिली थी मिट्टी
प्राण बने मिट्टी के दास !

मिट्टी ले कर खेल खेल में
गढ़ा खिलौना था अनमोल,
महँगा पड़ा प्राण को इतना
बिके प्राण मिट्टी के मोल;
प्राणों का आनंद बन गया
मिट्टी का क्षण-भंगुर हास !

अँधियारी कुटिया में दीपक,
ऐसा इन दोनों का मेल !
दोनों ही लोहू के प्यासे,
खेल रहे व्याधों का खेल !
एक दूसरे के शोणित से
लिखते संसृति का इतिहास !

मिट्टी से मिल प्राण मर गए,
मिट्टी भी बन गई अमर;
दोनों कारक, दोनों मारक,
छिड़ा हुआ है महासमर !
प्राणों को निर्वाण मिलेगा,
मिट्टी को चिन्मय उल्लास !

घड़ा

पाँवों ने गूंदी थी मिट्टी,
हाथों ने गढ़ दिया घड़ा,
कुम्भकार की अंगुलियों ने
छू-छू कर, कर दिया बड़ा !

काटा फिर काले धागे से,
दिया उसे अस्तित्व अलग;
अवा लगाया, खूब तपाया,
मिट्टी का तन किया कड़ा !

बहती हुई नदी से ले कर जल,
जल का पथ मोड़ दिया,
अधोगामिनी गति से छिन में
जल का नाता तोड़ दिया !

सिर पर लिया, दिया पानी को
ऊर्ध्वगमन का इंगित यों—
प्यास बुझा कर कुम्भकार ने
पुनः घड़े को तोड़ दिया !

कुंभकार

बड़े जतन से कुम्भकार ने
अवा लगाया,
अन्तराल में ज्वाल जगा कर
अवा जलाया;
अन्त समय फिर कुम्भकार ने
जलते जलते,
तपे तपाये उसी कुम्भ को
अपना पाया !

केन्द्र और विस्तार

देखो, भाई, आया है फिर
महासिन्धु में ज्वार !
आया है विकराल काल को
फिर जीवन पर प्यार !

महासिन्धु से निकली थी यह
स्वर्णबिन्दु-सी धरती,
धरनी को धरने अम्बर में
पुनः तरंग उमड़ती !
सुनता हूँ मैं लहरों पर फिर
दूरागत हुङ्कार !

सो जायेगी पुनः अतल के
तल में धरा हमारी,
मरण-नीड़ में भरता होगा
जीवन फिर किलकारी !
अप्रकेत जल, और काल का
पल फिर शून्य अपार !

फिर ऊपर आयेगी धरती,
फिर धरती पर जीवन !
फिर अव्यक्त व्यक्त होगा,
फिर होगा नयनोन्मीलन !
जल थल, मरण और जीवन,
फिर केन्द्र और विस्तार !

काया

प्राणों को प्रभु ने दी काया !
क्यों दी काया ?
काया है क्षणभंगुर माँटी,
केवल आनी-जानी छाया !
प्राणों को प्रभु न दी काया !
क्यों दी काया ?

छाया का आधार, प्राण भी—
काया के बिन निराधार था;
कैसी माया !
प्राणों को प्रभु न दी काया !
क्यों दी काया ?

चिदानन्द पाने से पहले
प्राण विजन में भटक रहे थे,
कठिन कंटकाकीर्ण पंथ में
पाँव सत्य के अटक रहे थे !

दुख भोगे बिन योग नहीं है,
दुख भोगें कैसे काया बिन ?
इसी सोच में प्राण पड़े थे,
निरानंद थे प्राणों के दिन !

ऐसी विपदा में प्राणों न
था आश्रय माँटी का पाया !
प्राणों को प्रभु ने दी काया !
क्यों दी काया ?

कौन कहे वह दुख कैसा था,
दुख बिन दुख जो रहा समाया !
प्रभु ने वह दुख सहज हर लिया
दे दी जब माँटी की काया !

प्राणों को प्रभु ने दी काया !
क्यों दी काया ?

किस किनारे ?

किस किनारे जा लगेगी प्राण की नैया न जाने ?
उस किनारे हों न हों इस पार के साथी सुहाने !

सहज हँसमुख सुख, हृदय का धन, न जाने कहाँ होगा ?
दुख, मिलन तन-यमुन मन की जाह्नवी का, कहाँ होगा ?
कौन जाने, कौन हों उस तीर पर अपने-बिराने ?

कहाँ होगी सहज सौंधी गंध वाली सजल धरती ?
वह लहर, जो तृषित चितवन को अचानक तरल करती ?
कहाँ होगी दूब, उस पर भी तुहिन के चटुल दाने ?

नील नभ नक्षत्रधारी और दो नैना भिखारी, कहाँ होंगे ?
स्वप्न की गंधर्व-नगरी, दृश्य उसके हृदयहारी, कहाँ होंगे ?
याद आयेगा मुझे जग, आज जग माने न मान !

स्वप्न-फूल

क्या क़ीमत है इन सपनों की
स्वप्न-वणिक, बतलाओ ?
एक स्वप्न के चार बूँद आँसू ;
चाहो, ले जाओ !
पहले ठोक-बजा लेने दो
मुझे मधुर स्वप्नों को...
तुम क्या लोगे मधु-कलशों को
जाओ, भाई, जाओ !

क्या कीमत है इन फूलों की
मालिन, बतला जाओ !
एक फूल के लिए चार छः
आहें ! लेते जाओ...!
ठहरो ज़रा सोच लेने दो
मालिन, मुझको क्षण भर !
फूल क्षणिक हैं, तुम क्या लोगे ?
जाओ, भाई, जाओ !

निशि-दिन यों ही गये सोच में, आई अन्तिम बेला !
स्वप्न-फूल खिल कर मुरझाये, मैं रह गया अकेला !
सुख की चाह, दुःख से डरना; मेरी भूल यही थी—
अब क्या होगा ? पैंठ उठ गई, बीता दर्शन-मेला !

संकोच

जोड़ कर सौ तार, फिर फिर तोड़ देता हूँ !
धार पर नैया चढ़ा कर, मोड़ देता हूँ !

जान कर निश्चय नियति का, है अनिश्चय क्यों ?
आज से कल, यों समय का व्यर्थ विनिमय क्यों ?
हो रहा अपनी लगन पर मुझे विस्मय क्यों ?
हार में मनुहार अपनी जोड़ देता हूँ !

पहुँच कर सन्मुख तुम्हारे, विमुख हो जाता !
तोड़ने से टूटता भी नहीं यह नाता !
दूर खिंच कर, और भी खिंच पास यों आता
गूढ़ रेशम-गाँठ से ज्यों होड़ लेता हूँ !

संकुचित-सी सुन्दरी वह, झिझक जिसका नाम !
दो जनों के बीच आना, यही उसका काम !
भूलता हूँ ! यह तुम्हारी छाँह-छबि अभिराम !
नरम पहुँचे पकड़, क्यों न मरोड़ देता हूँ ?

बीती घड़ियाँ

जिन गलियों से गुज़र चुके हो,
उन गलियों में कभी न जाना !
वह गवाक्ष, वह वातायन, वह पट,
सब दिन को बंद मिलेंगे !

जिन बगियों से गुज़र चुके हो,
उन बगियों में कभी न जाना !
तुम्हें देख कर फूल खिले जो,
मुरझा कर वह फिर न खिलेंगे !

गये साल जिस वन-प्रदेश में
चले गये थे, वहाँ न जाना !
हाथ हिला कर पास बुलाने वाले
पत्ते अब न हिलेंगे !

कच्चा घड़ा घड़ी भर का है
बार बार मत भरना !
चाहे जितने दिनों जियो,
पर बार बार मत मरना !

यह ममत्व !

यह ममत्व कितना निर्मम है !

मृन्मय घट में बंद किया है
इसने हँसती हुई लहर को,
समय-सिन्धु से हर लाया यह
ज्योति-विचुम्बित एक पहर को;
जहाँ बसाई किरन सुनहली,
वहाँ मोह का सूना तम है !

थिरक थिरक कर हरियाली में
खेल रहे थे झुन्ड मृगों के,
लगते थे लघु सहज सलोने
तारक-दल-से भूमि-दृगों के;
जीवन के उन सुखद क्षणों को
बाँध रहा निशि-दिन का भ्रम है !

सीमाहीन स्नेह का आँगन,
खंड खंड करता जिसको मन !
हैं अनन्त के नखत अनगिनत,
गिनती है जिनको नित चितवन !
अन्त जहाँ रोना-खोना है
वहाँ नित्य पाने का श्रम है !

निर्वासित

निर्वासित कर सागर-पार,
छीन लिया, दाता, क्यों तुमने
मेरे हाथों से पतवार ?

दिशा नहीं दी, केवल गति दी !
दुर्बल पौरुष, प्रबल नियति दी !
मति अति क्षुद्र, समुद्र प्रकृति दी !
समरसता का सार बता कर,
दिया विषमता का संसार !

धर कर मेरे पंख धरोहर,
कहा कि तज दे मानसरोवर,
फिर सुधि भी दी मधुर मनोहर !
पीड़ाओं का नीड़ दिया है—
चिर-वियोग का दे उपहार !

छीन लिया तुमने मेरा स्वर,
दिया मुझे यह माटी का घर !
अन्तरिक्ष के स्वर में स्वर भर,
निर्वासित मैं कैसे गाऊँ
कर अनुराग-राग-विस्तार ?

कच्चा धागा

जीवन तो कच्चा धागा है,
टूटे न तभी तक चमत्कार!
जब तक न समेटे काल,
तभी तक है यह छाया निराधार!

वह पाँच पंख का पंछी है,
है जिस पंछी का नाम प्रान!
जब तक न हुई, तब तक न हुई,
पर निश्चित है उसकी उड़ान!
आश्चर्य यही, वह सहता है
निशि-दिन मिट्टी का महाभार!

बो दिया किसी ने तेज-बीज
कुश-सदृश कर्म से जोत क्षेत्र,
उठ खड़ी हो गई नई फ़सल,
फूले न समाए नियति-नेत्र!
फिर दाँतेदार दराँती से
कर दिया काटने को प्रहार!

मिट्टी का सतरँग फूल खिला कर
गंध बसाई प्रानों की,
सुख-दुख की किरन-तुहिन से की
वर्षा आँसू मुसकानों की!
यों बाग लगा कर जीवन का
कर रही मृत्यु उपवन-विहार!

फिर डाल पसारा पल-छिन का,
आ बैठा पथ में वणिक काल!
इस हाथ दिया, उस हाथ लिया,
यों फैलाया नित इन्द्रजाल!
इस हाट-बाट का ठाठ-बाट
देखा है किसने बार बार?

विचार

नदी को आया विचार;
यदि न होते दो कगार,
विचर सकती मैं सदा आनन्द से
उन्मुक्त-धार !

रुक गई गतिशील धार,
झुक गए सहसा कगार;
बह गई नदिया
दिशाओं में भुजाओं को पसार !

खो गया कर्त्तव्य - ज्ञान,
खो गया गंतव्य - ध्यान,
ले गया अस्तित्व सरिता का
अमर्यादित विचार !

वर्तमान

नीर नहीं,
इसीलिए प्रतिबिम्बित ज्योति नहीं;
कुआँ आज अंधा है !

सड़ी मूल,
इसलिए डालों पर नहीं फूल;
रूख आज सूखा है !

उर्वर है किन्तु अभी
धरती का उर उदार,
मानव की मानवता अभी नहीं वंध्या है !
सूर्य अस्त हुआ,
अभी चंद्र नहीं आया है;
दिवा नहीं, निशा नहीं, यहाँ अभी संध्या है !

नव युग

धूलि भरे अँधियारे जनपद, उनको स्वच्छ प्रकाश चाहिए !
गाँव गए दिन के खँडहर हैं, उन्हें नयी अभिलाष चाहिए !

लघु स्वार्थों के बड़े नगर हैं, दूकानें हैं वहाँ, न घर हैं !
उनकी मूल न मानवता में, उनको नव अवकाश चाहिए !

कहीं भीड़ का सूनापन है, कहीं नोड़ का सूनापन है;
नगर ग्राम के चिर विरोध को नया, प्रीति का पाश चाहिए !

गया बीत युग व्यवधानों का ! नव युग है नव मन-प्राणों का !
नयी कल्पना के अंकुर को, नव भूतल-आकाश चाहिए !

प्रश्न

मुँह डाल कुएँ में
प्रश्न अनगिनत पूछ रहा है मानव !
उठतीं अनगिनत प्रतिध्वनियाँ,
उत्तर देकर सो जातीं !

ऊपर अनन्त के अन्तर में
उठती अनुगूँज व्यथा की,
(ज्यों कृष्णपक्ष की चंद्रकला)
ध्वनियाँ नभ में खो जातीं !

मुँह उठा शून्य में
प्रश्न अनगिनत पूछ रहा है मानव !

अगन

जग जिसको निर्धूम अगन कहता है,
वह भी तो धोखा है !
धुआँ न निकले, इसीलिए
ज्वाला ने श्वासों को रोका है !

धधक रही है अग्नि युगों से,
दमक दीखती है घर घर में,
अहि-सा कुटिल कुण्डली मारे
धुआँ सो रहा है अन्तर में !

काल कुरेदेगा जब इसको,
तब अन्तर्मन-लपट बढ़ेगी !
चिनगी लगी चुनरिया ओढ़े
धूम-शिखा गिरि-शिखर चढ़ेगी !

•

लघुभार लहरें

गगन में छितरी हुई
झंकार की लघुभार लहरें
साँझ को घर लौटती
गुञ्जान पंछी-पाँति-सी हैं !

मौन के जाने हुए अनजान मन में
खोजती हैं रात भर को फिर बसेरा,
मौन के जाने हुए अनजान मन में
खोज लेंगी रात बीते फिर सबेरा

नीड़ से लेकर नया बल,
मुक्त-मन नूतन उड़ानें, नयी तानें,
खोजने नूतन गगन के छोर
फिर किस ओर उड़ जाएँ न जानें !

भोर को घर छोड़ती
गुञ्जान पंछी-पाँति-सी है
गगन में छितरी हुई
झंकार की लघुभार लहरें !

मावस

ज्योति का काजल आँजे हुए
युगों की मावस आई है,
चेतना हर लेने वाली
मदालस हर अँगड़ाई है!

अस्त हो गया प्राण का तेज,
खो गई मनोज्योति की धार,
सूर्य के साथ चंद्र भी आज
गया अस्ताचल के उस पार!
शून्य में जाग रहे नक्षत्र,
भूमि पर निद्रा छाई है!

अमा की महामोह-माया,
ज्योति को भी जिसने कीला!
बुझा कर सूर्य-चन्द्र के दीप
करें लय-काल प्रणय-लीला
नये मन-प्राणों की प्रतिपदा
जाने कहाँ समाई है?

निशा पुकारी !

यों नव युग की निशा पुकारी !
देखें कौन बनेगा मेरे
मनहर स्वप्नों का अधिकारी !

वही रात का स्वामी होगा,
दिन जिसका अनुगामी होगा !
पूरे होंगे काम उसी के,
जो भी पूर्ण अकामी होगा !
सन्ध्या के रवि पूर्णकाम पर
सहस नयन रजनी बलिहारी !
यों नवयुग की निशा पुकारी !

सबसे पहले उठ कर गाये
जो अपने युग-दिन का भैरव,
युग-रजनी के अन्तरिक्ष में
शोभित होगा बन कर कैरव !
रजनी उसके लिए बनेगी
नित्य नित्य नितनयी कुमारी !
यों नवयुग की निशा पुकारी !

भोर हुए जीवन के जल पर
अग्नि-नलिन बन कर जो सोहे,
जिसको चार दिशाएँ देखें,
वही निशा के मन को मोहे !
जिसके गुन भैरवी गा रही,
है कैरवी उसी की प्यारी !
यों नव युग की निशा पुकारी !

युग की रानी

फिर सतृष्ण नयनों से तुमको
देख रही है, युग की रानी !
चितवन से रस-दान ग्रहण कर लो,
जागो, युग-कवि अभिमानी !

गई रूठने की बेला अब,
नयी सुबह होने वाली है !
सन्मुख मुख पर अरुणाभा है,
पीछे केश-राशि काली है !
जिसका दूत भोर का तारा,
आ पहुँची वह भोर सुहानी !

अनगिनती तारों की वीणा
हैं असंख्य जिसकी झनकारें,
उसके हर परदे से सौ सौ
अभिलाषाएँ तुम्हें पुकारें !
फिर छेड़ो, कवि, युग की वीणा,
फिर झंकृत हो युग की वाणी !

मुहूर्त

शताब्दियाँ चलीं गईं,
शताब्दियाँ आयेंगी,
किन्तु यह मुहूर्त एक
कभी नहीं आया था,
कभी नहीं आयेगा !

सिद्धियाँ अमित अनेक,
मात्र यह मुहूर्त एक;
वरण करो बन विवेक,
बन कर संकल्प-टेक,
काल नहीं खायेगा !

महाकाल कल्पवृक्ष,
क्षण मुहूर्त बीज रूप;
क्षमता का अंकुर बन
धर कर शाश्वत स्वरूप
दिशि-पल में छायेगा !
आयेगा यदि मुहुर्त,
कभी नहीं जायेगा !

देश मेरे !

दीर्घजीवी देश मेरे !
तू विशद वटवृक्ष है—
धरती-गगन का पूत—
जिसको एक है दिशि-पल पवन
प्रतिकूल या अनुकूल !

बदलते हैं पत्र के दिन-मान,
झरते और लगते हैं नये फल-फूल !
जटायें बढ़ कर, धरातल पर उतर कर,
बन गई हैं नया तन नव मूल !

दीर्घजीवी कौन होता है ?
वही, जो पालता है
निज नियति का,
चिर प्रकृति का,
जगत्पति का सदाशय आदेश !
कुछ न कह कर,
नियत रह कर,
सदा सहता है विनय से
जो कि जीवन में निरन्तर
हर्ष और कलेश !

किन्तु क्या इतना अलम् है ?
है यही क्या इष्ट एक यथेष्ट ?
तू बड़ा है,
किन्तु छोटे हैं नहीं क्या
फूल-फल तेरे—
तनुज-तनुजादि, पादप-श्रेष्ठ ?

दीर्घजीवी देश मेरे !
आज श्रद्धा से भरे
मेरे हृदय में
खटकती है
एक यह शंका
कि जैसे शूल !
क्या जगत में
दीर्घजीवी की तरह
जीना नहीं है भूल ?

अव्यक्त

नगर बड़े हैं,
बड़े बड़े नगरों से लेकिन
बहुत बड़ा है मानव !
छोटे छोटे गाँव
उसे छोटा न कर सके अब तक !

करतब उसके
कला, सभ्यता, जाति, राज,
असफल प्रयोग हैं, लेकिन
यत्नशील वह पूर्णकाम होगा—
आएँगे वह दिन !

प्राण देह से,
साधन से साधक महान् बन
सुदृढ़ खड़ा है मानव !
स्वप्न मुक्त हैं,
बंद रहें तो रहें नयन युग
अपलक !

काम बड़े हैं,
बड़े बड़े कामों से लेकिन
बहुत बड़ा है मानव !
असफलता है उसको असफल
कर न सकी हैं अब तक !

राम कहानी

'मुझे देख,' कहती है मुझसे
मेरी छाया दर्पन में !
'मुझे देख,' कहता है मुझसे
मेरा अपनापन मन में !

पर जानें क्यों सुनी-अनसुनी
हो जाती है इनकी बानी ?
पर जानें क्यों नहीं सुहाती
मुझको मेरी राम कहानी ?

मेरा ही क्या, यही हाल है
भारत की प्रत्येक शक्ति का !
मेरा ही क्या, मुख निढाल है
लज्जा से प्रत्येक व्यक्ति का !

'मुझे देख !'—उसको न देखने
मैं समीप से हट जाता !
'मुझे देख !'—उसको बिसारने
ज़ोर ज़ोर से मैं गाता !

दुख होता है !

दुख होता है
देख देख कर इस दुनिया को !
पर मेरा दुख
इसको कैसे सुख पहुँचाये ?

क्या कुछ करूँ ?
आज तो कुछ भी करते
मुझे घृणा होती है !
देख देख कर
कृत्य मनुज के
धीरज करुणा भी खोती है !
गीली आँखें
शून्य गगन की ओर उठी हैं,
शुष्क धरा पर
सजल श्याम घन कैसे छाएं ?

इस दुनिया में
कर्मनिरत कर
ग़लत धारणा से शासित हैं;
सब आदर्श-विचार हमारे
कर्मनिरत कर पर आश्रित हैं !
अकर्मण्य मन
यों पसीज उठता है जैसे,
सूना नभ
धरती पर शीतल जल बरसाए !

सार-वस्तु के लिए पुनः
सब कुछ असार तजना ही होगा !
जड़-जंगम-जन में रमता जो
उसे पुनः भजना ही होगा !
धुन्धभरी आँखों से निर्झर
बह निकले हैं,
कालिख भरे चरण-चिह्नों का
पथ धुल जाए !

पोंछ लो आँसू

पोंछ लो आँसू कि मौसम आ गया मुसकान का !
दृष्टि-पथ पर धरो हँस कर दीप फिर पहचान का

याद शीतल छाँह है बीते दिनों के बाग की,
याद मीठी गूंज है बीते दिनों के राग की,
याद कर लो ध्रुव चरण फिर मिलन के मधुगान का !

फेर दी कूची विधाता ने विरह के लेख पर,
नई हरियाली हँसी धूमिल क्षितिज की रेख पर,
लहलहाया लता बन कर बीज हर अरमान का !

धरा फिर फूले-फलेगी गेहियों की गोद में,
अगोचर गोचर बनेगा देहियों के मोद में;
गया अब युग बीत देही-देह के व्यवधान का !

ताड़ का जोड़ा

किनारे के कगारे पर
खड़ा है ताड़ का जोड़ा !
निगोड़ा चाँद उनके ठीक
बीचोंबीच हँसता है !
धरा की मीन-सी मुरला,
बहू बेरहम मछुए की
अकेली सोचती है यों
कि नीले जाल वाला कहाँ बसता है !

किनारे के कगारे पर
खड़ा है ताड़ का जोड़ा !
कि उनके ठीक बीचों बीज
हँसता चाँद है छठ का !
धुआँ उठने लगा सहसा
मुरल की ताड़पत्री से,
कि मछुए की मुरलिया से
उठा है फिर सुरीला राग सोरठ का !

वन और घन

हरहराता सरसराता वन,
थरथराता चरमराता वन,
पवन बन आई प्रभंजन
संग लाई घन !

प्रतिध्वनित हो रही नभ में
सघन-वन-चीत्कार,
सह नहीं सकते व्यथित तरु
प्रभञ्जन की मार;
गगन में गर्जन !

बिजलियों की छाँह में
गहरा रही है रात,
थपथपाता नभ, धरा के
कँपकँपाते गात;
बरसते रस-कन !

भरभराता फरफराता घन,
छरछराता झरझराता वन,
निचुड़ जाता बरस कर घन,
निखर जाता वन !

वर्षा का तूफ़ान

आया वर्षा का तूफ़ान !
झुक झुक जाते पेड़ ताड़ के
मारुत की ज्यों खिंची कमान !

तीक्ष्ण तीव्र बानों-सी बूँदें,
क्यों न वेगवश आँखें मूँदें ?
मत्त पवन करता तक तक कर
सिन्धु - किनारे शर - संधान !

तीखी हैं तिरछी बौछारें,
शीतल जल की तरल कटारें;
मूर्छित धरती पर प्रहार कर
बादल फूँक रहे हैं प्राण !

घुल जाएँगे रेती के कन,
खुल जाएँगे तृण के बन्धन,
धुल धुल कर धरती-तल कोमल
होगा मरकत - मनी समान !

बादल

डगमग डगमग पग धरे गगन के
मग में डगमग पग पग पर,
वह किसकी टोली आज,
कर साज, उनींदी-सी, जग कर !

हड़बड़ा रहे, लड़खड़ा रहे,
गड़गड़ा रहे काले पहाड़ !
यह किसकी डोली लाये हैं
बादल, काले काले कहार ?
वह कौन, बिजुरिया नाच रही
जिसकी मुँदरी के हर नग पर ?

वह वरुणपुरी से आते हैं,
घन इन्द्रपुरी को जाते हैं !
वह मंद मंद कुछ नर्तन कर,
गुरु गर्जन कर क्या गाते हैं ?
घर आँगन छोटा लगता है
इनके विशालतर हर डग पर !

वह कौन असूर्यम्पश्या है,
यह बादल जिसके वाहक हैं,
जिसकी हर चञ्चल चितवन के
सम्मोहन के सब गाहक हैं!
क्यों आँखें नहीं ठहरती हैं
उसकी सज धज की जगमग पर?

बादल-दल

(१)

हम धीवर हैं,
हम अम्बर के इन्दीवर हैं,
हम चीर, नीर के चीवर हैं;
गालों पर काजल के धब्बे;
विरही के दूत सुधीवर हैं !

(२)

सुत सागर के,
वाहक मधवा की गागर के,
मणि इन्द्रनील नीलागर के;
राधारानी के केश - पाश,
बांधव सवर्ण नटनागर के !

(३)

नभचारी हैं,
हम मारुत के सहकारी हैं,
हम अनल और जल-धारी हैं;
पाँचवें तत्व क्षिति पर जैसे
हम तत्व चार बलिहारी हैं !

(४)

विद्युति की असि,
हम ही कवि कालिदास की मसि,
जल और किरन की केलि रहसि,
हम कामरूप तम के कानन,
हम तिमिर-वरन शत युग्म सरसि!

(५)

हम स्वराधीन,
रस-पीन राग-गायक प्रवीन,
मानस में तड़पन-तड़ित-मीन;
हम सर्जन और विसर्जन के
जीवित प्रतीक, क्षण-क्षण नवीन!

हिरने !

ओ जंगल के हिरने !
आया है क्यों इस नगरी की
गलियों में फिरने ?

'मैं जिस जंगल में रहता था,
वहाँ बाँस का वन उगता था;
उसके ओर-पास दिन भर मैं
चोयल हरी घास चुगता था !

'कल क्या देखा ! इसी नगर का
युवक वहाँ आ पहुँचा कोई !
पाँव शिथिल, पर मन चञ्चल था,
चितवन थी कुछ खोई खोई !

'मन की खोई शांति खोजने
नष्ट किया उसने वन का धन !
एक हरी पोरी के कारण
काट दिया सारा बाँसी-वन !

'आया हूँ मैं उस बाँसी के
स्वर पर मर मिटने !'

ओ जंगल के हिरने !

कवि गाता है !

जीवन-सागर से ले कर जल
बादल जग पर बरसाता है !
इसीलिए तो कवि गाता है !

जो कदली के रहस मूल में,
वही तत्व बसता बबूल में,
फुलक-मूल में, शूल-फूल में,
जल का जीवन का नाता है !
इसीलिए तो कवि गाता है !

जीवन बरस बरस जीवन पर,
कुछ रह जाता है हृत् बनकर,
कुछ बन वन कर, नदी और नद
फिर सागर में बह जाता है !
इसीलिए तो कवि गाता है !

सागर-तट पर महादेश हैं,
सब के अपने हर्ष-क्लेश हैं,
सब के, सब सुख-दुख अपना कर
जीवन-सागर लहराता है !
इसीलिए तो कवि गाता है !

विजन-वीणा

गूंजती है विजन-वीणा,
गूंजती है सघन वन की सायँ सायँ!
निपट एकाकी, विजन में,
हम किसे अपनी कहानी कह सुनायँ?

दीप आँचल में छिपाए
दूज की संध्या गई पश्चिम दिशा को,
सौंप सुधि का दीप मुझको
और तम का बोझ इस धूमिल निशा को!
गीत हम कब तलक गायँ?

बुझे-से जल रहे तारे,
रात-दिन के बीच की अन्तिम घड़ी है!
सौंप अपना शून्य मुझको
रात भी, मुँह फेर जाने को खड़ी है!
हम यहाँ से कहाँ जायँ?

आनन्द-बीन

कसते हो क्यों तुम बार बार ?
भय है कि टूट जाए न तार !

यह्व सच है, स्वर के कंचन को
कसना पड़ता है निष्ठुर बन !
पर डरता है निष्ठुरता से
मेरा अबोध यह्व आतुर मन !

झंकार - किरन निकले जिससे,
है कठिन सजाना सुर - सिंगार !

मिट्टी को सोना बनना है,
सोने को खरा उतरना है;
जड़ता के भँवर - भरे तम से
चेतन का कठिन उबरना है !

बजती न सहज आनन्द - बीन,
जब हाथ रोकता अन्धकार !

पुकार

किसने मुझे पुकारा है ?
उसके मेरे बीच दमकती
विद्युत - सी असि - धारा है !

मैंने उसे नहीं देखा !
मेरे उसके बीच आवरण
बनी रहे विद्युत - रेखा !
दोनों ओर ज्योति - रेखा के
अन्तहीन अँधियारा है !

कब तक अब अनजान रहूँ ?
जिसने मुझे अजान बनाया,
कब तक उसको ज्ञान कहूँ ?
बंदी भी पहचान गया—
यह ज्योति सुनहली कारा है !

आलिंगन मैं क्यों न भरूँ ?
असि-धारा में देह बहा कर,
क्यों न ज्योति की धार तरूँ ?
मेरा अनजाना अभीष्ट वह
प्राणों से भी प्यारा है !

अज्ञात व्यथा

जाने किस अरण्य-रोदन की
है अनुगूंज समाई मन में ?
किस अज्ञात व्यथा की छाया
रही सदा मेरे जीवन में ?

प्रेम और पीड़ा का परिणय
कब से रचता रहा विधाता ?
जाने कब तक बना रहेगा
प्राणों से पीड़ा का नाता ?
मिला नहीं है इस रहस्य का
मुझको अब तक कोई ज्ञान;
है अनजानी टीस छिपी क्यों
उन्मद मधुकर के गुञ्जन में ?

कब तक दुख के हाथों
शिक्षा-दीक्षा होगी जीव मात्र की ?
कब तक आत्मा ऋणी रहेगी
मरणशील क्षणग्रस्त गात्र की ?
कब तक बनी रहेगी क्षमता
मिट्टी के इस खण्ड पात्र की ?
कब तक लगी रहेगी मन की
लगन अभी सपने के धन में ?

मरण और अमरण का मैंने
अब तक भेद - अभेद न जाना,
कब तक और पहनना होगा
शिव को अशिव भस्म का बाना ?
कब तक अमृत सिद्ध करने को
होगा अभी मसान जगाना ?
मिलता क्यों आनन्द शिखी को
व्यथित मथित घन के गर्जन में ?

बुद्धि-डोर

छोटी - सी बुद्धि - डोर,
अतल सत्य - कूप !
शून्य मुकुर अति विशाल,
अतिशय लघु रूप !

एक बना क्यों अनेक ?
क्यों अनेक एक ?
बंद कमल सदृश मर्म
भृङ्ग है विवेक !
ढलने को चढ़ती क्यों
जीवन की धूप ?

बिना प्राण - दान कहाँ
यहाँ ज्ञान - दान ?
यम के विद्यालय में
मिलता है ज्ञान !
बलि-पशु बन जायँ प्राण,
देह काष्ठ - यूप !

नव झंकार

दो मुझे वह्न मौन, जो उद्गम बने झंकार का !
वह्न खिंचाव-तनाव दो, शृंगार जो हर तार का !

फिर हिमावत के हृदय को गला दो आनन्द से,
तरल तंद्रिल नाद - स्वर को बाँध दो नव छंद से,
वह्न सहज संकोच दो, गतिबिन्दु जो विस्तार का !

ध्यान के बिन धारणा, ज्यों धारणा के बिन विचार,
है विचारों के बिना शब्दावली निष्फल प्रसार !
शून्य का संसार दो, आधार जो कि विचार का !

नींद का दो नीड़ मेरी चेतना के विहग को,
फिर नई जागृति मिले मेरे शिथिल मन सजग को,
वह्न कठिन ठहराव दो, जो केन्द्र है संचार का !

शत अमाओं का तमस मन में बसा दो एक क्षण,
शत उषाओं का उदय हो प्रतिनिमिष प्रत्येक क्षण !
दो प्रलय का एक पल, जो जनक है संसार का !

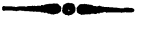

संन्यासी

जिस ममता को भोग रहे हैं
वैभव - भोग - विलासी,
उस ममता का आदि स्रोत है
वैरागी सन्यासी !

जग से नाता तोड़ रहा है,
जग से नाते जोड़ रहा है !
किस अगाध करुणा से प्रेरित
वह जग से मुँह मोड़ रहा है ?
सुखी रहें सब, यही चाहता
वह सानन्द उदासी !

छोड़ राजपथ, पगदंडी पर
दंडी बन पर जाता !
सब सोएँ सुख-नींद नगर में,
वह शमशान जगाता !
नीलकंठ विष पीता, वसुधा
सुधा पिये रस-प्यासी !

क्षुधित अस्थि-पंजर दधीचि का
राजदण्ड सुरपति का !

तृण से रच देता सिंहासन ?
आसन त्यागी यति का !
तीन लोक से न्यारी सब दिन
लोक-नाथ की काशी !

सब की इच्छा पूरी करता
वह निरीह अनुरागी !
जग को नाम-रूप-गुण देता
नाम - रूप - गुण - त्यागी !
नेति नेति कहते रहते ऋषि,
रटते घट-घट-वासी !

कनक रेख

जीवन की कसौटी पर
खिंची कनक-रेख,
यही है वेदना !

लिखा हुआ रेखा में
सब का इतिहास,
अधरों का हास यहाँ
दृग-जल का लास,
इसी स्वर्णगंगा में सोई संवेदना !
यही है वेदना !

जीवन की कसौटी पर
खिंची कनक - रेख,
यही है वेदना—
यही संवेदना !

तरु विशाल

हर तरु विशाल लगता है जैसे
गोपुर हो परमेश्वर का !

लघु बीज और पादप विशाल,
हरियाला जल, पल्लवित ज्वाल !
मृत्तिका - मूल, तन आल-व्याल,
वह शाखाओं का शिखर-जाल !
हर पत्र पत्र में दिखता है
नव रूप दिव्य सर्वेश्वर का !

वह है, इसलिए सत्य है वह !
वह सत्य, स्वयम्भू, स्वयमूसिद्ध !
क्षणग्रस्त जगत के बीच वृक्ष
अक्षय स्वरूप, यह चिर प्रसिद्ध !

पृथ्वी की मूक प्रार्थना वह,
आशीष - वचन अखिलेश्वर का !

अमलतास

आतप में तप कर अमलतास
बन गया खरा सोना !

वह जेठ मास की दोपहरी,
यह पुष्पराग-रँग-रस-लहरी !
प्राणों के मरकत-बन में वह
बन गया मनोबल का प्रहरी !
यों सार्थक हुआ दुपहरी में
नित नग्न खड़ा होना !

हठयोगी तरुण तपस्वी है
मन-प्राण-प्रफुल्लित अमलतास !
जंगम बन गया धरातल पर
अन्तर्मन-वासी चिद्विलास !
अब और हरा लगता वन का
हर हरा-भरा कोना !

फागुन मास

हलका लाल. पियाबांसा है,
गहरा लाल पलाश,
फूल बन फूला फागुन-मास !

फागुन के गुन गाती कोकिल,
फूलों से अमराई बोझिल;
चटक रहे गोफन, शुकदल से
हरा हुआ आकाश !

जौ की बाली दूध-भरी है,
पीली सरसों हुई हरी है,
फ़सल अगाई पकने आई,
आज हुआ विश्वास !

डालों की जो लाज गई अब,
पहनेंगी पोशाक नई सब;
सूखे पत्तों पर चरमर कर
ऋतुपति आता पास !

लगा डोलने पवन पछय्या,
होली गाने लगा गवय्या;
अंग अंग में रंग नया है,
नस नस में रस-प्यास !

धरती-आसमान

जो धरती है सो आसमान !
दोनों में केवल भेद यही—
है यह मृदंग, वह मुक्त गान !

यह मधुर गंध, वह मुग्ध पवन !
है देह धरा तो श्वास गगन !
यह नीड़ और वह क्रीड़ाङ्गण—
निद्रा में स्वप्नों के समान !

धरती पर उतरा अम्बर है,
बन बन कर बीज निछावर है;
यह ऊर्ध्वमूल अश्वत्थ विश्व
अम्बर पर धरती की उड़ान !

यह मधुर अधर, वह मधुर हास !
यह दीप-मालिका, वह प्रकाश !
यह तेजोमय का सिंहासन,
वह तेजपुञ्ज का ही वितान !

काम-धारा

काम-धारा बह रही है
युगों से किसके सहारे ?
हर लहर नव देह धारे
हर घड़ी लगती किनारे !

देह धरते ही लहर निज
देह का गुण धर्म गहती,
अचेतन आनन्द - लहरी
बंदिनी बन कुछ न कहती !
देह का गुण-धर्म दुख है,
देह का गेही पुकारे !

जन्म में दुख, दुख दिये बिन
जीव अनुदिन जिये कैसे ?
किन्तु वह सम्मोहिनी बिन
घूंट कड़वा पिये कैसे ?
क्या न दुख में भी छिपा सुख ?
कौन दुख पर सुख न वारे !

फूल-कली

हँस कर बोली कली अधखिली,
'फूल, तुझे क्या सोग है ?
'विगत रात का दलित कुसुम तू,
'तेरा क्या उपयोग है ?'

'महाकाल की फूल - माल में
'गुँथी हुई हैं दो लड़ियाँ !
'एक ओर अधखिली, दूसरी
'ओर सूखती पंखड़ियाँ !
'आज फूल, कल कली कली का
काल लगाता भोग है !'

हँस कर बोली कली अधखिली,
'फूल, तुझे क्या सोग है ?
'विगत रात का दलित कुसूम तू,
'तेरा क्या उपयोग है ?'

पेड़

करती है प्रहार
बार बार वह कुठार से,
कटता ही नहीं पेड़ !
नियति लकड़हारिन है,
काल की कुठार कठिन,
जीवन का वृक्ष है !

पर्वत

सूखी धरती, शून्य गगन का
प्रतिनिधि बन कर
ऊँचा पर्वत खड़ा हुआ है
मेरे सन्मुख !

उसकी रूखी ऊँचाई तक
कभी नहीं पहुँचा वन-प्रान्तर,
हरित गीत खेले न कभी
उसके शिखरों पर !

फिर भी,
ऊँचे शिखर नहीं हैं इतने ऊँचे,
ओढ़ सकें जो अचल शान्ति-सी
हिम की चादर;
या कि परिन्दे ऊपर उड़ कर
कभी न जिनका करें निरादर !

रूखे-सूखे इस पर्वत के
सब से ऊँचे शून्य शिखर पर,
कभी बैठ जाती क्षण भर को
जब स्वप्नों की हंस-मालिका,
तब यह पर्वत यशः-काय बन
हँस पड़ता है कुन्द-कली-सा
पंखडियों में बिखर बिखर कर,
हिम-कलियों में निखर निखर कर !

भग्न मंदिर

भग्न मन्दिर, ध्वस्त प्रतिमा, बुझ चुका है दीप कब का !
प्रतिध्वनित होता नहीं अब शेष स्वर भी घंट रव का !
शंख भी फूटा पड़ा है, फूल आँगन में नहीं हैं,
कहाँ भारत देश तब का, कहाँ भारतवर्ष अब का !

जो नहीं है, व्यर्थ उसमें क्यों रमाया जाय मन को ?
क्यों सुनाया जाय मन का रुदन युग-युग के विजन को ?
क्या न शिव अपनी सती का शव लिये रोते फिरे थे ?
पुनः जीवन दे सका है कौन किसके मृतक तन को !

जो गया सो गया, उसको क्या करोगे जन्म देकर ?
रह न पाया जो, रहेगा किस तरह वह जन्म लेकर !
और यदि आत्मा अमर है, सृष्टि यदि नित-नव .चिरन्तन,
तो विगत को गत समझ कर, दो उसे नित नव कलेवर !

मच्छ, कच्छ, वराह, नरसी, तीन राम, अकाम श्रीधर,
थे नहीं पुनरुक्ति-दूषित, देह नित आए नई धर !
इसलिए अब मत बसाओ स्वर्ग के खँडहर पुराने;
अवतरण होगा नया कुछ इस नई भारत-मही पर !

गूंजता है भग्न मंदिर, गूंज अग जग डोलती है!
गूंज मन के मंदिरों में मोह के पट खोलती है!
देवता की मूर्ति की यदि कर नहीं सकते सुरक्षा,
तो अरक्षित ही रहोगे, ध्वस्त प्रतिमा बोलती है!

मध्ययुगीन और नवीन

ज्ञान गुहा में गुप्त हो गया, शक्ति दुर्ग में बंद हो गई !
सूर्य-किरण भी बनी असूर्यम्पश्या, क्रमशः मन्द हो गई !
दैन्य भूमितल पर मँडराया, हुई भूमिगत सकल सम्पदा;
वाणी अलंकारप्रिय बनकर, केवल बोझिल छन्द हो गई !

मध्ययुगीन मान्यताओं की भीति भित्तियाँ चढ़ीं गगन में;
गड़ी रसातल में रसवन्ती, रह न गया रस रज के कन में !
भेद बढ़ गया क्रमशः तन में, मन में, जीवन में, जन-जन में !
हुईं संकुचित सब प्रवृत्तियाँ, ह्रास-वृत्ति निर्द्वन्द्व हो गई !

दृश्यजगत की दृषद्वती-सी जग-जीवन की श्री न रहु गई,
पुनः प्रवाहित हो न सकूंगी, सरस्वती यह मर्म कहु गई !
गई गगन-घन की उदारता, ईंधन बन कर अग्नि दहु गई !
बंदी हुआ हंस आत्मा का, बस मिट्टी स्वच्छंद हो गई !

भस्मावृत चिनगारी बन कर जाग उठी है किन्तु नवीना,
लपटों के कर से छू दी है उसने पवन-तार की बीना !
छोड़ विलम्बित आलापों को द्रुतगति-रत षोड़शी प्रवीना !
गूंज उठे द्वादश मृदंग भी, वसुधा फिर सानन्द हो गई !

औरंगजेब की कब्र

प्रान से अनजान बन कर,
टूट कर बिखरी पड़ी है प्रान की जंजीर !
संगमरमर का अहाता,
महज मिट्टी में बनी है मौत की तसवीर !
जंग खाई-सी पड़ी है,
भूमि के तल में गड़ी है देह की तलवार ;
कब्र मिट्टी की चुना कर,
मौन मिट्टी बन गया है आज आलमगीर !

सो गया हारा-थका-सा,
वह धरा के द्वार जब आया धरा को खूंद;
दिया मिट्टी ने सहारा,
दस दिशा में दृष्टि दौड़ा, लिये दृग दो मूंद !
नर्म मिट्टी पर दिया लिख,
प्राण का निर्मम कथानक; यही उसकी कब्र;
सब्ज मरुए से सजी है,
सींचती है उसे जल की आज भी लघु बूंद !

पंख प्राणों के गए जब,
रही आकांक्षा धरा पर मृत्तिका सशरीर !
मृत्तिका सुख से गई सो,
रह गया क्या प्राण ही बेचैन और अधीर ?
है बड़ा जितना अहम्-मद,
है बड़ी उतनी निराशा, यह नियम अनिवार्य;
आज भी आलम वही है,
आज आलम में नहीं है वही आलमगीर !

मरुथल की मेंहदी

मरुथल की मेंहदी बड़ा रंग लाती है!
मरुथल की बुलबुल बहुत मधुर गाती है!

मरुथल ढोला है, मारू उसकी कामिनि,—
बस जाय नयन में बिन बादर की दामिनि!
मरुथल की चुनरी अँग अँग लहराती है!

नीरस मरुथल में सब रस मन में बसते,
नव रस के नव घन मन में सदा बरसते,
यह वर्षा रस केसरिया बरसाती है!

शृंगार वीर करुणा की वहाँ त्रिवेणी!
है स्वर्गनसेनी आरावलि की श्रेणी!
जौहर की ज्वाला पुष्पक बन आती है!

मरुथल में ऊपर कहीं नहीं है पानी;
मरुथल का पानी गहरा है अभिमानी!
मरुथल की धरती शोणित पी जाती है!

मरुथल की धरती है अम्बा का खप्पर,
वह कभी न बुझने वाली ज्वाला का घर,
नाहर पर बैठी अम्बा की थाती है!

सेनानी को देकर सिर की सेनानी,
मरुथल का मोती हो कैसे बेपानी ?
विष-प्याला पीकर मीरा मुसकाती है !

अन्तर में मुरली, बाहर मारू बाजा !
यों रूप चंडिका का मारू ने साजा !
मरुथल की धरती जुगल-रंग-राती है !

अब क्रान्ति न होगी प्रासादों में, रण में !
अब नई क्रान्ति होगी मरु के कण-कण में !
वह क्रान्ति मुकुट-मणियों को ठुकराती है !

वह क्रान्ति दुर्ग में छिप कर क्यों बैठेगी ?
वह खुल खेलेगी, खुले हाथ जय देगी !
वह राजा नहीं, प्रजा को अपनाती है !

प्रतीक

हो न सके पहचान सत्य की जिनके कारण,
ऐसे व्यर्थ प्रतीक बनाओ नहीं अकारण !
मन की प्यास बुझेगी कैसे इन पात्रों से ?
खंडपात्र हैं, होगा इनसे सत्य न धारण !

वह भी कैसा पात्र, न जिसमें सत्य समाए !
तरल सरल हो कर न सत्य जिसका बन जाए !
सागर से ले होड़ और टूटी हो गागर—
अच्छा हो यदि कोई सागर-तीर न जाए !

गहरा सागर लहरा कर, फिर सिमट सिमट कर
बूंद बनेगा, सूक्ष्म केन्द्र से चिमट चिमट कर !
होगा फिर विस्फोट, केन्द्र फिर वृत्त बनेगा,
बूंद उड़ेगी फिर लपटों से लिपट लिपट कर !

कणिकाएँ

(१)

नीचे तल की ओर सदा बहता रहता है नीर,
ऊँचे तल की ओर सदा चढ़ती रहती है पीर;
सदा हरा रसभरा सदा यह जीवन-वृक्ष रसाल,
पीर लता माधवी; सदा आलिङ्गन हेतु अधीर !

(२)

घानी पर बैठा था तेली तेल पेलता,
कब जाना उसने, विधना क्या खेल खेलता !
उसका दीपक बुझते बुझते दीप जला जो,
उस दीपक में और कुछ नहीं, वही तेल था !

(३)

नारी का मार्दव-उभार, सुकुमार-सुरेख कलेवर,
पुतली का ठहराव मुग्ध, चितवन का चालन, तेवर;
यह सब आकर्षक है, क्षण क्षण नित नव रस-वर्षक है,
प्यार नहीं आता नारी को कभी रूप अपने पर ?

(४)

कुञ्जों में कुञ्जरगति मंद पवन डोल रहा,
शत शत सुरभित रहस्य मंद पवन खोल रहा,
अखिल स्वप्न-देश बसा हिमकन की बूंदों में
फूलों के पलड़ों में मंद पवन तोल रहा !

(५)

थके बिना गूँथ रही काल-बधू गुञ्जमाल,
अरुण भोर असित साँझ रंगों का जुगल जाल,
युग युग से देख रही पौढ़ी पर बैठ वाट;
आएगा आएगा ड्योढ़ी पर महाकाल !

(६)

जादूगर काल, और चेरी हैं चार दिशा;
जादू की डिबिया में डिबिया हैं दिवा-निशा !
डिबिया में डिबिया है, डिबिया में फिर डिबिया;
दिवा-निशा, साँझ-उषा, कौन सत्य, कौन मृषा ?

(७)

मैंने देख लिया धरती का टीक दुपहरी में तपना,
सूरज का तन-तेज न सह कर, भूरज का थर थर कँपना !
ऊसर के धूसर आसन पर चिनगारी बैठी देखी,
किन्तु नहीं देखा मैंने उन तापस नयनों का सपना !

(८)

मिट्टी के ऋण रोग शोक रिपु,
भय मत कर, ओ प्राणी !
मिट्टी है सम्पत सुख रस मद,
मोहित मत हो, ज्ञानी !
मिट्टी ही शृङ्खला और
मिट्टी ही काराघर है,
किन्तु, प्राण, तू डरता क्यों है,
प्राणों में है पानी !

(९)

सुख में पलने वाले प्राणी
अपने सुख में खो जाते हैं;
पीर पराई उन्हें पराई,
इतने अपने हो जाते हैं!
लेकिन जो दुख में रह कर भी
ललचाते सुख पाने को,
वह सुख से ऊपर उठ कर भी
केवल दुख ही दुख पाते हैं!

(१०)

ओस बूंद का म्यान बनाया, मरकत की तलवार,
खड़े हो गए दूर्वा के दल, बाँधे हुए क़तार,
दर्शन-दुर्लभ किरन सूर्य की आएगी इस ओर
कई दिनों के बाद खुले हैं मेघराज के द्वार!

(११)

मोती बिछा दिये रजनी ने
ऊषा के अभिनंदन में;
मिटते मिटते मुसकाये शत
इन्द्रधनुष हर हिमकन में;
स्वयम् आरती का दीपक बन
सूक सुबह का चला गया,
नव युग के प्रति ऐसा ही
सद्भाव रहे मेरे मन में!